ISSN : 0975-3664
RNI : U.P.BIL/2012/43696

शोध धारा
SHODH DHARA

कला और मानविकी का त्रैमासिक, पीयर रीव्यूड, रेफर्ड एवं यू.जी.सी. केयर लिस्टेड, शोध जर्नल
[A Quarterly Peer Reviewed, Reffered, UGC Care Listed, Bi-lingual (Hindi & English) Research Journal of Arts & Humanities]

Year : 2021 **Month : June** **Vol. 2**

प्रधान संपादक
Chief Editor
डॉ0नन (श्रीमती) नीलम मुकेश
Dr. (Smt.) Neelamn Mukesh

61

संपादक
Editor
डॉ0 राजेश चन्द्र पाण्डेय
Dr. Rajesh Chandra Pandey

प्रकाशक : शैक्षिक एवं अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन), उ0प्र0
Published by : Shaikshik Avam Anusandhan Sansthan, Orai (Jalaun) U.P.

शोध-धारा
SHODH-DHARA

वर्ष/Year	:	**2021, जून/2021, June**
		Vol.2, अंक 2
		कला और मानविकी का त्रैमासिक, पीयर रीव्यूड, रेफर्ड एवं यूजीसी केयर लिस्टेड शोध जर्नल
		A Quarterly Peer Reviewed, Reffered, and U.G.C. Care Listed Research Journal of Arts & Humanities
प्रकाशन	:	डॉ० राजेश चन्द्र पाण्डेय (महासचिव) शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन) उ०प्र०
Publisher	:	**Dr. Rajesh Chandra Pandey** (General Secretary) Shaikshik Avam Anusandhan Sansthan, Orai (Jalaun) U.P.
मुद्रक	:	कस्टमर गैलरी, मौनी मंदिर, उरई (जालौन), उ०प्र०
Printer	:	**Customer Gallery,** Mauni Mandir, Orai (Jalaun) U.P.

अंशदान/Subscription :

एक अंक One Volume	: 100/-
व्यक्तिगत पंचवर्षीय Individual Five Year	: 2000/-
व्यक्तिगत आजीवन Individual Life Membership	: 3000/-
संस्थागत पंचवर्षीय Institutional Five Year	: 2500/-
संस्थागत आजीवन Institutional Life Membership	: 5000/-

(Duration of Life Membership is 10 year)

नोट : सभी प्रकार के भुगतान 'शोधधारा' उरई के नाम से देय है।

Note : All payments relating to this journal shall be made by draft in favour of the " ***Shodh Dhara***", Payble at **Orai.**

खाता धारक का नाम`	: शोध धारा	खाता संख्या	: 7033852673
बैंक का नाम	: इण्डियन बैंक	IFSC Code	: IDIB000D695
ब्रान्च कोड	: डी.वी.सी. ब्रांच 6136	MICR Code	: 226019211

The Journal does not ask for publication charges in any form.

कार्यालय : डॉ० (श्रीमती) नीलम मुकेश
प्रधान संपादक, शोध-धारा, १०७५, बैंक कॉलोनी, जालौन रोड, उरई (जालौन), उ०प्र०
: डॉ० राजेश चन्द्र पाण्डेय
संपादक, शोध-धारा, २६२, पाठकपुरा, उरई (जालौन), उ०प्र०

Office : **Dr. (Smt.) Neelam Mukesh,** Chief Editor, Shodh-Dhara,1075, Bank Colony, Jalaun Road, Orai (Jalaun) 285001,U.P., Mobile : 9450109471
: **Dr. Rajesh Chandra Pandey,** Editor, Shodh-Dhara, 262, Pathakpura, Orai (Jalaun) 285001,U.P. Mobile;9415592698(W), 9198204835, email:shodhdharajournal2005@gmail.com

डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय (महासचिव, शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन)) मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी द्वारा कस्टमर गैलरी, उरई (जालौन) से मुद्रित करवाकर शैक्षिक एवम् अनुसंधान संस्थान, उरई (जालौन) से प्रकाशित। संपादक –डॉ. राजेश चन्द्र पाण्डेय

Note : * The views expressed in the published articles are their writers own. The agreement of the Editorial Board or the Shodh Pratisthan is not necessary.* Disputes, If any shall be decided by the court at Orai (Jalaun) U.P.

सम्पादकीय

जीवन मूल्यों का संरक्षण...

हम इक्कीसवीं सदी में जीवन जीने का खुलेआम दावा कर रहे हैं। इस बात का भी दंभ भर रहे हैं कि हमने जीवन को पूर्णतः अपने नियंत्रण में कर रखा है। लेकिन सच इससे कहीं अलग है। दरअसल हम आज भी आधुनिक होने के नाम पर रूढ़िवादी और दकियानूस ही हैं। हमारी सोच परिष्कृत दिख सकती है लेकिन वैसी है नहीं। हमने आज भी अपनी आँखों से वह पर्दा नहीं हटाया है जिससे दूर की चीजें साफ–साफ दिख सकें। इक्कीसवीं सदी का लगभग डेढ़ दशक बीत चुका है लेकिन हम अभी भी भविष्य की चुनौतियों के लिए तैयार नहीं है। राजनीति, धर्म, विज्ञान, शिक्षा, राष्ट्रीयता आदि जैसे गंभीर क्षेत्रों में अभी भी हम खुली सोच नहीं रखते हैं। हमारा स्तर अभी भी आरोपों–प्रत्यारोपों से ऊपर नहीं उठ पाया है। हम किससे बेहतर हैं और कौन हमसे छोटा है–यही हमारी सोच का आधार है। जबकि आज आवश्यकता इस बात की है कि हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने को और अधिक सशक्त, संपन्न बनाएं। भारत को फिर से विश्व गुरू बनाने के लिए विगत् दिनों से जो प्रयास प्रारंभ हुए हैं उसमें हमें भी अपनी भूमिका का सशक्त एवं सकारात्मक निर्वहन करना होगा।

जीवन की इस आपा–धापी और मूल्यधर्मी संघर्ष के बीच हम अपनी इस यात्रा में एक और पड़ाव पार कर आपके पास इस अंक के साथ उपस्थित हैं। लगभग दो दशक की हमारी यह यात्रा आप सभी के सहयोग से अनवरत् चल रही है, यह संपादक मण्डल के लिए प्रसन्नता की बात है। हम एक बात अपने लेखकों से फिर से निवेदन करना चाहेंगे कि शोध आलेख भेजते समय मानकों को पूर्णतः संज्ञान में रखें। क्योंकि बड़ी संख्या में विषय विशेषज्ञों द्वारा शोध पत्र निरस्त किये जा रहे हैं। अतः शोध विषय, शोध सारांश, संदर्भ आदि पर विशेष ध्यान दे कर शोध आलेख भेजें।

यह अंक अपनी संपूर्णता में आपके हाथों में है। इस अंक में ४० शोध पत्र एवं एक कृति विमर्श संकलित है। इस प्रकार यह अंक अपने कलेवर में कुल ४१ लेखों को समेटे आपके हाथों में है।

संपादक मंडल

ISSN : 0975-3664 RNI : U.P.BIL/2012/43696

शोध धारा
SHODH-DHARA

कला और मानविकी का त्रैमासिक, पीयर रिव्यूड, रेफर्ड एवं यूजीसी केयर लिस्टेड शोध जर्नल (साहित्य, कला और संस्कृति पर केंद्रित)
(A quarterly peer reviewed, referred, U.G.C. care listed reseach journal of Art & Humanities)

Year 2021 June Vol. 2

अनुक्रम Contents

शीर्षक	लेखक	पृ०सं०
शोध आलेख		
हिन्दी साहित्य		**1-124**
१. मनोहर श्याम जोशी और उनका शिल्पगत प्रयोगः 'कुरु कुरु स्वाहा'	डॉ० सोफिया राजन	1- 8
२. समकालीन हिंदी कविता में 'तृतीयलिंगी' विमर्श	हर्षिता द्विवेदी	9-17
३. अंतर्वशी उपन्यास प्रवासी जीवन संघर्ष और स्त्री चेतना का दस्तावेज	डॉ० योग्यता भार्गव	18-24
४. कबीर के काव्य में लोक तत्व	डॉ० संतोष कुमार चतुर्वेदी	25-28
५. भारतीयता की अवधारणा और फणीश्वर नाथ रेणु के उपन्यास	डॉ० बलजीत कुमार श्रीवास्तव	29-34
६. मानवीय संवेदना और विज्ञापन	प्रतिभा डॉ० मुदिता चन्द्रा	35-41
७. आदिवासी समाज में राजनैतिक शोषण की समस्या और हिन्दी उपन्यास	डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय	42-46
८. हिन्दी पत्रकारिता में सम्पादकत्व के विविध आयाम : तत्कालीन और वर्तमान चुनौतियों के संदर्भ में	डॉ० राम प्रवेश राय	47-53
९. निराला जी के उपन्यासों की शिल्प संवेदना	निशा यादव डॉ० सुनील विक्रम सिंह	54-57
१०. सुखदा एक महत्वाकांक्षिणी नारी की आत्मकथा	डॉ० वसुंधरा उपाध्याय	58-64
११. सुभाष शर्मा की कहानियों में सामाजिक यथार्थ	डॉ० शशिकांत मिश्र	65-71
१२. प्रेमचंद की रामलीला कहानी रामकथा के संदर्भ में	डॉ० अनिल कुमार	72-75
१३. पूंजीवादी उपभोक्तावादी संस्कृति और स्त्री	दिनेश कुमार पाल	76-82
१४. राहुल सांकृत्यायन के उपन्यासों में भाषा का स्वरुप	सत्य प्रकाश पाण्डेय	83-89
१५. जगदीश गुप्त के प्रबंध काव्य रचनाओं का आलोचनात्मक अध्ययन	संजय कुमार सोनकर	90-98
१६. प्रेमचंद की कहानियों में दाम्पत्य जीवन	श्रीमती मीरा मुंडा डॉ० मुदिता चन्द्रा	99-106

१७. मानव मूल्य और प्रतीक पुरुष–राम	डॉ० माधुरी गर्ग	107-114
१८. गिरीश पंकज के 'स्टिंग आपरेशन' में राजनीति	डॉ० गोरखनाथ तिवारी	115-119
१६. विज्ञापन की भाषा : स्वरूप एवं प्रकृति	डॉ० नवनाथ गाड़ेकर	120-124
✦ संस्कृत साहित्य		**125-140**
२०. वैदिक वाङ्मय और यज्ञीय मीमांस	डॉ० सन्तोष कुमार पाण्डेय	125-132
२१. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय चेतना	डॉ० राखी वशिष्ठ	133-136
२२. श्रीमद्‌भगवतगीता में भक्ति स्वरुप	डॉ० शिवसम्पत द्विवेदी	137-140
✦ दर्शन		**141-179**
२३. जयप्रकाश नारायण के सामाजिक दर्शन की प्रासंगिकता	डॉ० लवलेश कुमार	141-144
२४. सांख्य दर्शन के संदर्भ में शिक्षार्थी की संकल्पना	कृष्णपाल सिंह डॉ० रामेन्द्र कुमार गुप्त	145-150
२५. कतिपय यौगिक ग्रन्थों में ध्यान योग निरूपण	रीतू जयपाल सिंह राजपूत	151-158
२६. अद्वैत वेदान्त दर्शन और शैक्षिक निहितार्थ	डॉ० कीर्ति सिंह	159-166
२७. गीता एक सत्य मार्ग की शिक्षा	डॉ० दिनेश कुमार	167-172
२८. योग शिक्षा में कौशल विकास	प्रियंका रानी मनीषा	173-179
✦ संस्कृति		**180-271**
२६. भारतीय संस्कृति पर बौद्ध एवं जैन परम्परा का प्रभाव	डॉ. प्रवीण कुमार मिश्र	180-185
३०. एक भारत श्रेष्ठ भारत कार्यक्रम : देश की संस्कृति के संरक्षण एवं प्रसार के क्षेत्र में एक सार्थक प्रयास	डॉ० दीपा गुप्ता डॉ० विकास कुमार	186-190
३१. भारतीय सांस्कृतिक जीवन शैली में यौगिक सात्विक आहार का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण	ज्योति जयपाल सिंह राजपूत	191-197
३२. विश्व के प्रमुख धर्म एवं उनका वितरण प्रतिरूप–एक सिंहावलोकन	डॉ० अनूप कुमार सिंह	198-205
३३. पुराणों में नैमिषारण्य का महत्व और चुनौतियां	डॉ० रजनीकान्त श्रीवास्तव	206-210
३४. भारत में ई–शिक्षण : सांस्कृति मूल्यों का संरक्षणात्मक सन्दर्भ	डॉ० सुभाष चन्द्र गोयल	211-223
३५. भारतीय संस्कृतिक मूल्यों के संवर्द्धन की दृष्टि से वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बुनियादी शिक्षा की आवश्यकता	डॉ० सुनीता सिंह नितेश कुमार मौर्य	224-232
३६. भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक–सांस्कृतिक विकास में सार्वजनिक पुस्तकालयों की भूमिका	विनय शंकर महाजन	233-239
३७. रोग क्षमता (इम्यूनिटी) की वृद्धि में योगाभ्यासों की भूमिका –एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ० चिन्ताहरण बेताल	240-247
३८. भारतीय दार्शनिक परम्परा में प्रकृति और स्त्री : पारिस्थितिकीय नारीवादी संदर्भ में	डॉ० नमो नारायण	248-253
३६. जैनसाहित्य में यात्री और सार्थवाह (पहली से छठीं सदी तक)	डॉ० राजकुमार	254-261

४०. वैदिक कालीन सैन्य संगठन एवं युद्धकला	डॉ० श्रवण कुमार त्रिपाठी	262-271
कृति विमर्श		**272-274**
४१. श्रीलाल शुक्ल की सृजनात्मकता	डॉ० राजेश चन्द्र पाण्डेय	272-274

हिन्दी साहित्य
ISSN : 0975-3664, RNI : U.P.BIL/2012/43696
SHODH-DHARA ; Jun 2021; Vol. 2; P. 42-46

आदिवासी समाज में राजनैतिक शोषण की समस्या और हिन्दी उपन्यास

डॉ० उमेश कुमार पाण्डेय

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, हिन्दी, शासकीय महाविद्यालय, **बलरामपुर, छत्तीसगढ़**

(प्राप्त : २८ फरवरी २०२१)

Abstract

भारतीय राजनीति में आज भी आदिवासियों की हिस्सेदारी बहुत कम है। जो लोग मुख्य–धारा की राजनीति में शामिल भी हैं, उनका प्रभाव सीमित है। राजनीति के अपराधीकरण और धन बल तथा बाहुबल के बढ़ते इस्तेमाल ने जनजातियों के लिए राजनीति की राह मुश्किल की है। वर्तमान समय में वोट की राजनीति के लिए भी जनजातियों का शोषण किया जाता है। चूँकि ये लोग स्वभाव से प्रायः सीधे होते हैं, इसलिए बहुत जल्दी राजनेताओं की बातों में आ जाते हैं। चुनावों के समय उनके वोट पाने के लिए तरह–तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं। पैसे और शराब के बल पर उनसे अपने पक्ष में वोटिंग करायी जाती है। इस प्रकार के अलोकतांत्रिक कार्यो से देश की राजनीतिक प्रणाली में उनकी निष्पक्ष और उचित सहभागिता सुनिश्चित नहीं हो पाती है। आदिवासियों की राजनीतिक न्यूनता का प्रमुख कारण उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव है। आदिवासी लोग आज भी राजनीतिक अलगाव के शिकार हैं और सत्ता में उनकी भागीदारी उस अनुपात में नहीं हैं, जिसके वे हकदार हैं। समतामूलक समाज के निर्माण के लिये भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में आज बड़े बदलावों की आवश्यकता है।

Figure : 00 **References : 16** **Table : 00**

Key Words : **आदिवासी, राजनैतिक शोषण, गरीबी, अशिक्षा, अलगाव, जागरूकता का अभाव, भ्रष्टाचार समाज**

भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में अभी भी आदिवासियों की हिस्सेदारी बहुत कम है। जो लोग मुख्य–धारा की राजनीति में शामिल भी हैं, उनका प्रभाव सीमित है। हालाँकि संसद और विधानसभाओं में आदिवासियों के लिए सीटें सुरक्षित की गई हैं, लेकिन ये नाकाफी हैं। बहुत सारे सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में जनजातीय लोगों की बड़ी आबादी रहती है और उचित प्रतिनिधित्व के अभाव में उनकी आवाज दब जाती है। सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में ये लोग प्रायः जीत दर्ज नहीं कर पाते क्योंकि एक तो उनके पास संसाधनों की कमी होती है और दूसरे तथाकथित मुख्य–धारा के लोग उन्हें अपने समाज से कटा हुआ महसूस करते हैं। राजनीति के अपराधीकरण और धन बल तथा बाहुबल के बढ़ते इस्तेमाल ने भी जनजातियों के लिए राजनीति की राह मुश्किल की है। एक सामान्य और औसत दर्जे के आदिवासी का अपने बूते राजनीति में जगह बनाना बहुत ही मुश्किल है। जनजातीय समाज में भी आज भाई–भतीजावाद और क्षेत्रवाद का चलन बढ़ा है। उनके कल्याण के नाम पर राजनीतिक दांव–पेंच आजमाए जाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात आदिवासियों को चुनाव की प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार तो मिला, लेकिन विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं ने उन्हें इस प्रकार आंदोलित करना शुरू कर दिया कि उनमें पृथकतावाद और राजनैतिक असंतोष की समस्या धीरे–धीरे करके पनपने लगी। इसके फलस्वरूप अनेक जनजातीय क्षेत्रों ने स्वायत्त राज्य की मांग प्रारंभ कर दी। उदाहरण के लिए संथाल जाति के लोगों ने पृथक झारखंड राज्य के लिए आंदोलन चलाया। इसी प्रकार के आंदोलन मध्यप्रदेश की गोंड, भील और महाराष्ट्र के भण्डारा जिले की जनजातियों के द्वारा भी किये जा रहे हैं। राजनैतिक असंतोष की समस्या

ने स्थानीय प्रशासकों और बाहरी समूहों के साथ जनजातियों के संबंधों को तनावपूर्ण बनाया है।

वर्तमान समय में वोट की राजनीति के लिए भी जनजातियों का शोषण किया जाता है। चूँकि ये लोग स्वभाव से प्रायः सीधे होते हैं इसलिए बहुत जल्दी राजनेताओं की बातों में आ जाते हैं। चुनावों के समय उनके वोट पाने के लिए तरह–तरह के प्रलोभन दिये जाते हैं। उन्हें विकास के बड़े–बड़े सपने दिखाए जाते हैं। लेकिन एक बार चुनाव प्रक्रिया पूरी होने के बाद मुश्किल से ही विजयी उम्मीदवार के दर्शन होते हैं। इससे आदिवासियों का विश्वास तो खंडित होता ही है उनकी आवाज भी दब जाती है। छोटे–मोटे चुनावों में इनके वोटों को खरीदने के मामले भी प्रकाश में आते रहते हैं। पैसे और शराब के बल पर उनसे अपने पक्ष में वोटिंग करायी जाती है। इस प्रकार के अलोकतांत्रिक कार्यों से देश की राजनीतिक प्रणाली में उनकी निष्पक्ष और उचित सहभागिता सुनिश्चित नहीं हो पाती है।

पंचायत और स्थानीय निकाय के चुनावों में कहने को तो आदिवासियों के लिये पर्याप्त सीटें आरक्षित हैं लेकिन वास्तव में इस वर्ग से निर्वाचित प्रतिनिधियों के अधिकारों का प्रयोग उच्च वर्ग के लोग ही करते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि सक्षम लोग छद्म उम्मीदवारों के माध्यम से अपना नियंत्रण बनाये हुए हैं। आदिवासियों की राजनीतिक न्यूनता का प्रमुख कारण उनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव है। देश की विकृत होती राजनीति पर 'शैलूष' उपन्यास की सावित्री लल्लू नट से कहती है– ''आजकल गोबर पर मलाई की परत डालकर गंदी राजनीति खेली जा रही है और तमाशा यह है कि इसे न तो सत्ता गलत समझती है और न तो विपक्ष। इसका नतीजा सामने आता है तो जनता को पता चलता है, एक पाव चावल का दाम दुगुना हो गया। दूध में अरारोट मिलाकर बेचने वाले कमिश्नर से ज्यादा तनख्वाह पाते हैं। ठीकेदार लखपती हो गये, करोड़पति कहो तो ज्यादा सही होगा। जो जितना बड़ा चोर है, वह उतना ही विश्वसनीय है। जो जितना बड़ा गद्दार है, वह उतना ही पूजनीय है। यानी 'देश किधर जा रहा है', का हल्ला तो बहुत है पर जुआठ की रसरी हम मूर्खों के गले में कसती जा रही है और इस उलार गाड़ी को कोई सीधी नहीं कर सकता।''[1] आदिवासियों की गरीबी के लिए भी बहुत हद तक उनका राजनैतिक शोषण जिम्मेदार है। राजनैतिक अलगाव के चलते वे हमेशा से ही अलग–थलग रहे और उनका समुचित विकास नहीं हो पाया। 'शैलूष' उपन्यास में इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए सावित्री मानिक से कहती है– ''आज हमारा आदिवासी गरीब, गरीब से भी नीचे यानी दरिद्र होता जा रहा है। क्यों मानिक, ऐसा क्यों है? ऐसा इसलिए है कि तुम्हारे नेता दो मुँहे सांप की तरह दोनों को गटकना चाहते हैं–मालिक को भी और मजदूर को भी।''[2]

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' में भी आदिवासियों के राजनैतिक शोषण की समस्या को उठाया गया है। चुनाव के वक्त नेता आम लोगों से बढ़–चढ़कर वादे करते हैं और चुनाव के बाद पलटकर उनकी ओर देखते भी नहीं। उपन्यास में दूलन जब सरमन के बहनोई से नेताजी के वादों की बात करता है तो सरमन का बहनोई इन सब वादों को धोखा करार देता है। उसे मालूम है कि हमारे देश के नेताओं का कोई ठोस चरित्र नहीं है, सब झूठे हैं। दूलन सरमन के बहनोई बाबू से कहता है–

– ''वोट मांगने वाले बाबूजी सरमन भइया के कंधे पर हाथ धरकर अपना जनेउ छूकर कौल खाकर गए थे कि अबकी बार इस बस्ती का ही उद्धार करना है। अर्जी लगा देना।

– सब फरेब।

– दातारनगर के वोटरों को कोटर नहीं मिले?

– वह भी झूठ दूलन। यह बता कि उन कोटरों में रहता कौन है? जनजाति–कल्याण के बाबुओं के

रिश्तेदार ही न? कबूतराओं के नाम भरकर मकान की पर्ची काट दी।''[३]

यहाँ पर एक बात स्पष्ट होती है कि जनजातीय लोगों को उनके हिस्से में आयी सुविधायें भी नहीं मिलतीं। पहुँच वाले लोग हर सही–गलत तरीका अपनाकर उन पर अपना कब्जा जमा लेते हैं। इसी उपन्यास का पात्र रामसिंह भी सिस्टम का शिकार बनता है। पढ़–लिखकर भी रामसिंह पुलिस और प्रशासन के अत्याचार के सामने विवश है। उसके पास शोषित होने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। रामसिंह की बेटी अल्मा अपने पिता के संबंध में सोचती है–''बप्पा छटपटाया करते थे–सरकार अपना राज चलाती है, या सारा काज डाकुओं, हत्यारों और पुलिसवालों के हाथ सौंप रखा है? ऊपर से तमगा यह कि सब कुछ जनता के लिए है, जनता के द्वारा हो रहा है। इससे अच्छा तंत्र और क्या होगा?''[४]'

'कब तक पुकारूँ' उपन्यास में भी लेखक आदिवासियों के राजनैतिक शोषण पर चिंता व्यक्त करता है। देश की राजनीति का चरित्र ऐसा है कि सब कुछ झूठ और फरेब की बुनियाद पर टिका है। वास्तव में जो हमारे हितैषी दिखते हैं वे ही अंदर से हमारी जड़ खोदते हैं। लेखक सुखराम से कहता है– ''तुम्हारा न जानना ही उन लोगों की मस्ती की वजह है जो तुम्हीं को धोखा देकर, तुम्हारी ही कमाई पर धोखे से तुम्हारा पेट काटते हैं, और यह सब न्याय के नाम पर होता है। बड़े–बड़े नेता तुम्हें भाषण देते हैं, वे तुम्हें नीति और धर्म की बात सुनाते हैं। कोई तुम्हें कोई पुड़िया देता है, कोई तुम्हें कुछ देता है। पर यह सब फरेब की बुनियादों पर खड़े महल हैं।''[५] लेखक समाज के तथाकथित ठेकेदारों की असली मानसिकता पर कठोर टिप्पणी करता है। उपन्यास में वह आगे लिखता है–''क्रांति के नाम पर यहां अवसरवादी और चोरों की जमात पल रही है। यहां सुधार का बीड़ा उठाने वाले वही हैं जो पाप के ठेकेदार हैं। सब जानते हैं, फिर भी ऐसे ही लोग शासन करते हैं, क्योंकि जनता अभी नहीं जागी है। वह सिंह अभी अपनी मर्यादा को पूरी तरह से पहचानकर गर्जन नहीं कर सका है, जिसकी एक प्रतिध्वनि सुनकर ही यह दूसरों के खेतों को चरने वाले पशु चौकड़ी भरकर भागते हैं। दो–दो कौड़ी के मेधावी बनने वाले टूटपूंजिए आज ज्ञान की गद्दियों पर बैठकर अपने को संस्कृति का दावेदार कहते हैं।''[६] उपन्यासकार समाज के स्वयंभू ठेकेदारों की भूमिका पर गहरा क्षोभ प्रकट करता है, लेकिन उसे यकीन है कि जैसे–जैसे समाज में शिक्षा और जागरूकता का प्रसार होगा, लोग खुद अपने अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ेंगे।

'काला पादरी' उपन्यास में तेजिन्दर देश के दुर्गम आदिवासी इलाकों में व्याप्त राजनैतिक असंतोष को उजागर करते हैं। छत्तीसगढ़ के आदिवासी अंचलों में व्याप्त अलगाव, बेबसी और पीड़ा को व्यक्त करते हुए उपन्यास में जेम्स खाखा सिस्टर अनास्तसिया से कहता है–''कई बार तो लगता है कि जैसे हम इस देश के 'नो मैंस लैंड' हैं, जिस पर कब्जा जमाने की कोशिश सभी पार्टियां कर रही हैं। खास तौर पर मेजर पालिटिकल पार्टीज।''[७] लेखक उपन्यास में आगे पुनः देश के राजनेताओं की दोहरी मानसिकता पर टिप्पणी करता है। जेम्स खाखा सिस्टर अनास्तसिया से आगे कहता है–''दीदी, देखो इन पालिटिशयंस को, इन्हें अपने आदिवासियों की संस्कृति पर गर्व होता है, लेकिन इन्हें शर्म आनी चाहिए कि वे आज भी नंगे रहते हैं।''[८]

संजीव के उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में डाकू समस्या के बहाने आदिवासियों के राजनीतिक शोषण की विस्तार से चर्चा की गयी है। उपन्यास में जिस थारू जनजाति के जीवन संघर्ष व दुःख दर्दों को शब्द–बद्ध किया गया है, वहाँ प्रजातंत्र व विकास एक प्रहसन के सिवाय कुछ नहीं है। संजीव ने उपन्यास में उस 'जनतंत्र' का विखंडन किया है जो समाज के प्रभुत्वशाली वर्ग द्वारा अपहृत

कर लिया गया है। राजनीति सदैव डकैतों को बढ़ावा देती मिलती है। उपन्यास में केन्द्रीय मंत्री दूबे जी डाकुओं की सहायता से चुनाव जीतते हैं। फिर वे डाकुओं को सहारा देते हैं। इस संदर्भ में आलोचक डॉ. गोपाल राय की टिप्पणी बड़ी प्रासंगिक है कि– ''वास्तविक डाकुओं से बड़े डाकू तथाकथित राजनेता हैं जो सत्ता प्राप्त करने के लिए उनका उपयोग करते हैं।''[९] दरअसल उपन्यासकार ने इस उपन्यास में अपराध के समाजशास्त्र की पड़ताल करते हुए आखिर उसकी जड़ तक जाकर उसके मूल तत्वों को ढूँढ़ निकालने की भरसक चेष्टा की है। संजीव मानते हैं कि कोई भी जन्म से डाकू नहीं होता। परिवेश ही इसके लिए कुसूरवार है। इस परिवेश को भी उन्होंने बराबर परिभाषित किया है। जैसे उस क्षेत्र की प्राकृतिक दशा, भूमि सुधार का अभाव, ढीला प्रशासन, पोलिटिकल शेलटर, रोजगार की समस्या, राजनीति, धर्म और कठिन भौगोलिक स्थितियाँ इसके मूल में निहित हैं।[१०] इसी उपन्यास के संदर्भ में जनजातियों के राजनीतिक शोषण पर टिप्पणी करते हुए डॉ. सूरज पालीवाल लिखते हैं–''पाँच वर्ष में एक बार चुनाव का नाटक होता है और सत्ता के शिखर पर वे ही लोग काबिज होते हैं, जो धनबल और बाहुबल से ताकतवर होते हैं। सामान्य आदमी के लिए चुनाव लड़ना तो दूर वोट देना भी मुश्किल है। गाँवों में लठैत तैयार कर दिये जाते हैं, वे अपनी मर्जी से वोट डलवाते हैं और सारा प्रशासन हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है।''[११] संजीव के ही एक अन्य उपन्यास 'सावधान! नीचे आग है' में राजनीति के गिरते स्तर पर चिंता प्रकट की गई है। उपन्यास के संबंध में इन्दु पी.एस. लिखती हैं कि–''उपन्यास आज की राजनीति के खोखलेपन के साथ प्रशासन एवं उनके माफिया द्वारा मजदूरों के शोषण की प्रामाणिक तस्वीर पेश करता है। राजनीतिक पतन एवं व्यवस्थागत विसंगतियों ने भारतीय जनमानस को बहुत गहराई तक आहत किया है। आज राजनीति की 'नीति' पूर्णतः लुप्त हो गयी है। राजनीति ने मनुष्य की तमाम संवेदनाओं का अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दोहन किया है।''[१२]

'वनतरी' उपन्यास में लेखक देश में व्याप्त भ्रष्टाचार और प्रशासनिक अकुशलता से चिंतित है। उसे इस बात का मलाल है कि आदिवासियों की पूछ कहीं नहीं है। उनकी गरीबी का हर जगह फायदा उठाया जाता है। हर जगह उसी की पूछ है जिसके पास पैसा है। उपन्यास में इस स्थिति के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए मिथिल वनतरी से कहता है–''और अब तो यह हालत है कि यदि पैसा न दो तो काम भी नहीं होगा और तुम्हें संतोष भी नहीं होगा। आफिस में जाओ तो बाबुओं को पैसा दो, तो मुँह खोलेंगें। नहीं दोगी तो मुँह ऐसा टेढ़ा करेंगें, जैसे लकवा मार गया हो। कर्मचारी के पास जाओ, तो वह बिना पैसे के बात नहीं करेगा। थाने में जाओ तो मुंशी से लेकर दरोगा तक बिना पैसे के ठहरने नहीं देंगे, भले ही तुम्हारे घर में कत्ल हुआ हो, या डकैती। अस्पतालों की हालत तो तुम देख चुकी हो। सुकुल मर गया, मगर डॉक्टर पसीजा तक नहीं। कहाँ जाओगी फरियाद लेकर। कोर्ट–कचहरी में जाओगी, तो काला कोट पहनें वकील लूटेंगें। नेता–मंत्री के पास जाओगी तो वे तुम्हारा शरीर लूटेंगे। इसीलिए कहता हूँ कि कहीं मत जाओ। जाना बेकार है।''[१३] 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में लेखक राजनीति और प्रशासन के उस गठजोड़ के प्रति चिंता जाहिर करता है जब वो साथ मिलकर आदिवासियों का शोषण करते हैं। लेखक इस संबंध में चिंता जाहिर करते हुए लिखता है–''यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा–कटा रहेगा!''[१४]

भगवानदास मोरवाल के 'रेत' उपन्यास में भी राजनीतिक दाँव–पेंचों का विस्तार से अंकन किया गया है। कंजर जनजाति के जीवन पर आधारित इस उपन्यास में राजनीति के तमाम घिनौने चेहरों का

पर्दाफाश किया गया है। समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के राजनेता हमेशा इस फिराक में रहते हैं कि दलित और आदिवासी उनसे आगे न बढ़ पायें। उन्हें भय रहता है कि अगर आदिवासी मुख्यधारा कि राजनीति में आगे आ गये तो सत्ता की चाभी उनके हाथ से छिन सकती है। रुक्मिणी कंजर की राजनीतिक सफलता से निराश सावित्री मुरली बाबू को सुझाव देती है कि– ''मेरा तो विचार है भाई साब की पार्टी अगर आपको धरमपुरा से टिकट देने का प्रस्ताव देती है, तो आपको उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए। रुक्मिणी को ठिकाने लगाने का इससे अच्छा अवसर हो ही नहीं सकता। जितनी तेजी–से वह उड़ान भर रही है, उसे जमीन पर लाना बहुत जरूरी है।''[१५] उपन्यास में उस मानसिकता को भी उजागर किया गया है जिसमें समाज के कमजोर लोगों द्वारा सफलता प्राप्त होने पर लोग पूर्वाग्रह के चलते उसे सहज स्वीकार नहीं कर पाते। रुक्मिणी कंजर द्वारा विधानसभा का चुनाव जीतने और राज्य में उपमंत्री के रूप में शपथ लेने की घटना को समारोह स्थल पर मौजूद तथाकथित भद्र लोग सहज पचा नहीं पाते। लोगों के आपसी संवाद से उनकी बेचैनी जाहिर होती है– 'कैसा समय आ गया है, चोरी–चकारी करने वाले अब हमारे रहनुमा बनेंगे...हम पर हुकम करेंगे।'/'लो, हो गया बंटाधार... मोरों की रखवाली अब चोर करेंगे!'/'भाई साब, इसी को तो कहते हैं लोकतंत्र!'/'घंटे का लोकतंत्र। इससे तो गुलाम ही अच्छे थे हम ...।'[१६]

इस तरह हम देखते हैं कि आदिवासी लोग आज भी राजनीतिक अलगाव के शिकार हैं और सत्ता में उनकी भागीदारी उस अनुपात में नहीं है जिसके वे हकदार हैं। समतामूलक समाज के निर्माण के लिये भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में आज बड़े बदलावों की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

१. सिंह, शिवप्रसाद; (१९८९), शैलूष, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृ० २८२
२. वही, पृ० ५१
३. पुष्पा, मैत्रेयी; (२००४), अल्मा कबूतरी, प्रथम पेपरबैक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० ४१
४. वही, पृ० ३५८
५. राघव, रांगेय; (२००२), कब तक पुकारूं, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ० ३५१
६. वही, पृ० ३५२
७. तेजिन्दर; (२००५), काला पादरी, साहित्य भण्डार, नई दिल्ली, पृ० १०१
८. वही, पृ० १०१
९. राय, गोपाल; (२००२); हिन्दी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० ३७६
१०. जलील, डॉ०वी०के० अब्दुल; (२००६), समकालीन हिन्दी उपन्यासः समय और संवेदना, समय प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० २०४
११. सिंह, कुंवरपाल; (२००४), हिन्दी उपन्यासः जनवादी परंपरा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० २२१
१२. जलील, डॉ०वी०के० अब्दुल; (२००६), समकालीन हिन्दी उपन्यासः समय और संवेदना, समय प्रकाशन, नई दिल्ली पृ० २०४
१३. श्रीवास्तव, सुरेशचन्द्र; (१९८६), वनतरी, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, पृ० १०६
१४. सिंह, राकेश कुमार; (२००५), पठार पर कोहरा, साहित्य भारती, आगरा, पृ० १३८
१५. मोरवाल, भगवानदास; (२००८), रेत, वांणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ० २२७
१६. वही, पृ० ३१०